* श्रीः *

कल्याणसौगन्धिकम्

कविनीलकण्ठविरचितम्



प्राप्तिस्थान—

मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास

संस्कृत पुस्तकालय सैदमिट्ठा बाजार

लाहौर ।

मूल्य छः आना ।

5

कल्याणसौगन्धिकं नाम व्यायोगः

श्रीकविनीलकण्ठविरचितः

'गढ़वाल' प्रान्तान्तर्गत 'रेवड़ी" ग्रामवास्तव्येन पं० रुद्रदत्तात्मसम्भवेन उर्वीदत्त शास्त्रिणा विरचितया हिन्दीटीकया समलङ्कृतः ।

व्याकरणाचार्य श्रीधरशास्त्रिणा हिन्दी-प्रभाकरेण संशोधितश्च ।

——

सचार्यं

लवपुरे

मेहरचन्द्र-लक्ष्मणदास

इत्येतैः स्वीये श्री मनोहरइलैक्ट्रिकाख्ये मुद्रणयन्त्रालये मुद्रयित्वा प्रकाशितः ।

सं० १९८८

पात्रों के नाम।

भीम—कथा का नायक।

तापस—जो गन्धमादन के ऊपर जाते हुए भीम को रोकने के लिए स्त्री-सहित आया था।

ब्राह्मणी- -तापस की स्त्री।

राक्षस—क्रोधवश नामक कुबेर के सरोवर का रक्षक।

हनुमान् -भीमसेन का ज्येष्ठभ्राता।

विद्याधर- कल्याणक नामवाला हनुमान् तथा भीमसेन का परस्पर भ्रातृत्व बोध कराने के लिए इन्द्र की आज्ञा से भूमण्डल पर आया हुआ इन्द्रदेव का सेवक।

गुणमञ्जरी--विद्याधर की सहधर्मधारिणी।



कथा का संक्षेप

इस नाटक में यह दिखाया है-कि-पाण्डु के पांच पुत्रों में से एक भीम भी है जो युधिष्ठिर से छोटा और अन्य तीन भाइयों से बड़ा है। एक दिन अचानक एक अति सुन्दर सुगन्धिमय कमल फूल गन्धमादन पर्वत से हवा में उड़कर द्रौपदी के सामने आगिरता है। उसको देख द्रौपदी मुग्ध होकर उसी तरह के अधिक फूल लाने के लिये उसे मजबूर करती है, यह देख भीम उसकी इच्छा पूरी करने के लिए रवाना होता है। यद्यपि उसे रोकने के लिए स्त्री-सहित एक मुनिराज भी जाते हैं, परन्तु जब भीम बड़ा तेजी से भागता रहता है तो वे हताश होकर अपने घर लौट आते हैं। आखिर भीम दौड़ता भागता गन्धमादन के ऊपर जाचढ़ता है। वहां पहुंच कर फूलों की तलाश करता, थोड़ी दूर जाकर क्या देखता है कि-वन की मनोहरता मन हर रही है, समीप ही एक सुन्दर सरोवर शोभा दे रहा है, उसके चारों ओर रखवारे फिर रहे हैं। वे उसे आते देख यमराजकी शङ्का से भागरहे हैं, इतने में एक प्रधान रक्षक राक्षस वहां आपहुंचता है, उसके साथ भीम की खूब बुरी भली होती है। आखिर गदा की चोट खाकर राक्षस भी कहीं चंपत हो जाता है, और ओट से आवाज़ आती है, कि-यह भीम फूल चुन सकता है। यह भीम कृतज्ञता प्रकट कर फूल ले लौट आता है, लौटते समय वह हनुमान के कदली वन में प्रवेश करता है, यह देख हनुमान मार्ग में लोटजाता है। उसे लोटा देख भीम बड़ २ बातें बना उसका पूंछ उठाना चाहता है, परन्तु उठा न सकने के कारण मन मारकर रह जाता है. तब एक दूसरे से कुछ २ जानकार होने पर भी भीम का अभिमान मिटाने के लिए हनुमान भीम से आभिड़ता है। इतने

में विद्याधर बीच आजाता है, और इन्द्रका उन दोनों का भ्रातृ-भाव बोधन-करण रूप संदेश कहने के बाद शान्त कर दोनों के साथ बैठ जाता है। फिर हनुमान विद्याधर का परिचय पूछता है। तब विद्याधर चला आता है, इसके अनन्तर भीम और हनुमान् की स्नेहमयी वातें होती हैं। आखिर भीम द्रौपदी के पास लौट आता है।

इत्यलम्।

पाठक वृन्द !

यद्यपि इस नाटक की अन्य भी टीकायें वर्तमान होयेंगी, तथापि यह टीका भी अपनी उपयोगितासे कहां तक आप लोगों का आश्रय अधिगत कर सकती है, यह बाद को ही ज्ञात होगा। मैं व्यर्थ बकवास करने से कुछ लाभ नहीं समझता।

निवेदक—
उर्वीदत्त शास्त्री

श्रीगणेशाय नमः । अविघ्नमस्तु ॥

कल्याणसौगन्धिकम् ।

भाषाटीकोपेतम्

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)

आसीद्यः स्वनिवासशैलतुलनात् प्रीतः प्रसादोन्मुखो
लङ्केशस्य ससम्भ्रमाचलसुतासंश्लेषसौख्यप्रदात् ।
हव्यं यस्य शरोद्भवे हुतवहे जातं पुराणां त्रयं
सोयं मुग्धशशाङ्कमण्डितजटाभारो हरः पातु वः ॥

(नान्दी के बाद सूत्रधार आता है)

अन्वयः-आसीदिति ।—यः लङ्केश्वरस्य स्वनिवासशैलतुलनात् ससम्भ्रमाचलसुतासंश्लेषसौख्यप्रदात् प्रसादोन्मुखः आसीत् ; यस्य शरोद्भवे हुतवहे पुराणां त्रयं हव्यं जातम्; स मुग्धशशाङ्कमण्डितजटाभारः अयं हरः वः पातु ।

भाषा टीका—जो हिमालय की पुत्री (पार्वती) के आलिङ्गन के सुख को देने वाले रावण के अपने रहने के पर्वत (कैलास) के उठाने से सन्तुष्ट हो प्रसन्न होगये थे, (अर्थात्-रावण ने जब कैलास पर्वत उठाया तो पार्वती उसके हिलने से डर कर महादेव जी से जा लिपटी जिससे उनको अति आनन्द हुआ) और जिन की बाण की अग्नि में तीनों लोक आहुति बन गये थे (अर्थात्-जल गये थे) वे ये प्रसिद्ध बाल चन्द्रमा से शोभायमान जटाजूट वाले महादेव जी तुम्हारी रक्षा करें ॥

(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य)

आर्ये! इतस्तावत्।

(प्रविश्य)

नटी—अंअ इंआह्मि।

सूत्र—अहं खल्वार्यमिश्रैरादिष्टः।

नटी—कहं विअ आदेसाणुग्गहो अंअमिस्साणम्।

[कथमिवादेशानुग्रह आर्यमिश्राणाम्।]

सूत्र—

आज्ञागुणेन गुणवद्भिरभिष्टुतानां
कात्यायनीचरणपङ्कजभक्तिभाजाम्।
षट्कर्म्मिणां निवसतौ परमाग्रहारे
प्राप्तप्रसूतिरुपसेवितवान् गुरुर्नः॥

(नेपथ्य की ओर देख कर)

सूत्रधार ऐ! प्यारी! इधर तो आओ।

(प्रवेश कर)

नटी -स्वामिन्! यह मैं (आपकी सेवा में) उपस्थित होगई।

सूत्रधार--प्रिये! माननीय दर्शक लोगों ने मुझे आज्ञा दी है।

नटी--माननीय दर्शक लोगों ने क्या आज्ञा करने की कृपा की, (अर्थात्-उनकी क्या आज्ञा है ?)

सूत्रधार–

आज्ञागुणेनेति–गुणवद्भिः आज्ञागुणेन अभिष्टुतानां कात्यायनीचरणपङ्कजभक्तिभाजां षट्कार्मिणां निवसतौ परमाग्रहारे प्राप्तप्रसूतिः नः गुरुः उपसेवितवान्।

भा०टी०--गुणवानों के आज्ञा रूपी गुण के कारण (अर्थात्-उन में यह गुण था कि वे हरेक की आज्ञा शिरोधार्य समझते थे, जिससे सभी उन पर प्रसन्न रहते थे और उनका कहा वे भी कर डालते थे) पूजे हुए और पार्वती के चरण कमलों की सेवा करने वाले ब्राह्मणों के

तदस्य नीलकण्ठनाम्नः कल्याणसौगन्धिकं नाम निवन्धनशरीरमिदमभिनयालङ्कारालङ्कृतमनुसन्दर्शयेति ।

नटी—अंअ सुद्दअप्पहुदीणं महाकवीणं णिवन्धणाणि मोत्तूण कहं एदस्स पओअदस्सणे अंअमिस्साणं पवेसो ।

[आर्य शूद्रकप्रभृतीनां महाकवीनां निवन्धनानि मुक्त्वा कथमेतस्य प्रयोगदर्शने आर्यमिश्राणां प्रवेशः]

सूत्र—आर्ये आश्रितवात्सल्यव्यसनी ननु सज्जनसमूहः । अपि च,

विद्यानामतिचिरसंस्तवैकदोषाद्
भुक्तानां बहुगुणतामचिन्तयित्वा ।
भोग्यानां समुपनतौ नवोदयानां
सर्वोऽपि प्रमुदमुपैति जीवलोकः ॥

परमाग्रहार नामक गांव में जन्म ले हमारे गुरु ने नाना शास्त्रों का अभ्यास किया है ।

सो इस नीलकण्ठ कवि के रचे हुए कल्याण सौगन्धिक व्यायोग को-जिस में अभिनय के योग्य (क़ाविल) अलंकारों की भरमार है--दिखाओ ।

नटी--स्वामिन् ! शूद्रक आदि बड़े २ (धुरन्धर) कवियों की रचनाओं को छोड़कर दर्शकों की इस नाटक के प्रयोग (अभिनय) दिखाने में कैसे प्रवृत्ति हुई ?

सूत्रधार--प्रिये ! सज्जन लोग (सर्वदा) मातहतों के ऊपर दयाभाव रखने वाले (या वात्सल्य रसपरिपूर्ण नाटक के प्रेमी) होते हैं । दूसरी यह भी बात है कि--

विद्यानामिति--विद्यानाम् अति चिरसंस्तवैकदोषात् भुक्तानां बहुगुणताम् अचिन्तयित्वा नवोदयानां भोग्यानां समुपनतौ सर्वो हि जीवलोकः प्रमुदम् उपैति ।

चिरकाल तक विद्या(काव्य नाटक)का अभ्यास करते रहने से भोगे हुए (इस्तेमाल में लाये) पदार्थों को अधिक लाभदायक या रुचिकर न गिन कर

नटी— जुज्जइ । (युज्यते)

सूत्र—तदिह सज्जीभव । अहमपि नेपथ्यविधानमनुतिष्ठामि । (परिक्रम्य कर्णं दत्वा) अये किन्नु खलु मयि सज्जननियोगानुष्ठानव्यग्रे शब्द इव श्रूयते । अङ्ग ? पश्यामि ।

(नेपथ्ये)

भीम न खलु न खलु गन्तव्यम् । ब्राह्मणि एह्येहि ।

सूत्र—भवतु विज्ञातम् ।

अगाग्रादप्राप्यं मरुदुपहृतं दिव्यकुसुमं
गुणाढ्यं पश्यन्त्या द्विगुणितमुदा नूतनतया ।
वहूनीच्छामीति द्रुपदसुतया भीममुदितं
प्रयान्तं संरोद्धुं व्रजति सकलत्रो मुनिवरः ॥

(अर्थात् जब चिर काल तक विद्या का अध्ययन अध्यापन होता रहता है तो बहुत सारे नाटक पढ़ने पढ़ाने में आते रहते हैं, जिस से उन में रुचि कम हो जाती है) नये२ पदार्थों के सामने आने से सारा ही संसार अति हर्ष मनाता है ।

नटी--आपका कहा सही है ।

सूत्रधार--(अच्छा ! तो अब) इस के लिए तय्यार होजाओ । मैं भी पर्दा और रङ्गभूमि (-स्टेज) आदि का बन्दोवस्त करता हूं ।

(घूमकर कान लगाता है)

अहो ! इधर तो मैं सज्जन लोगों की आज्ञा करने में लगा हूं,उधर यह शब्दसा क्या सुनाई देता है ? अच्छा ! देखता हूं ।

(नेपथ्य में)

भीम ! मत जाओ, मत जाओ । ब्राह्मणि ! इधर आओ, इधर आओ ।

सूत्रधार--ठीक ! (अब) जानलिया ।

अग्रेति—अगाग्रात् मरुदुपहृतम् अप्राप्यं गुणाढ्यं दिव्यकुसुमं पश्यन्त्या, नूतनतया द्विगुणितमुदा द्रुपदसुतया 'बहूनि इच्छामि' इति उदितं

(निष्क्रान्तौ)

स्थापना । (ततः प्रविशति सकलत्रस्तापसः)

तापसः—भीम न खलु न खलु गन्तव्यम् । ब्राह्मणि एह्येहि ।

पादौ मे नयने च निर्झरजलैरभ्युक्ष्य वक्षः शनैः
स्पृष्ट्वा कम्पितदुर्बलं भुजयुगं संवाहयामूलतः ।
पार्श्वे श्वासविकम्पिते धमनिभिः स्पष्टास्थिसंवेष्टिते
मुग्धे पीडय मन्दमन्दमसकृद् द्वाभ्यां कराभ्यामिमे ॥

ब्राह्मणी–एत्तिअम्मत्तो मग्गो; कणाम वेदणा ।

(एतावन्मात्रो मार्गः, का नाम वेदना ।)

प्रयान्तं भीमं संरोद्धुं सकलत्रः मुनिवरः व्रजति ।

पर्वत की चोटी से वायु के उड़ालाये, दुर्लभ और गुणों से भरे अति सुन्दर फूल को नवीनता के कारण दूने हर्ष के साथ देखती हुई द्रौपदी के 'बहुत चाहती हूं' इस प्रकार कहने पर (फूलों के लिए) जाते हुए भीम को रोकने के लिए स्त्री सहित मुनिराज जारहे हैं ।

दोनों (नटी सूत्रधार) चले जाते हैं)

प्रारम्भ । (तब स्त्री-सहित तपस्वी आता है)

तपस्वी--भीम ! मत जाओ मत जाओ । ब्राह्मणि ! इधर आओ इधर आओ ।

पादाविति—मुग्धे, मे पादौ, नयने, वक्षश्च निर्झरजलैः शनैः अभ्युक्ष्य, कम्पितदुर्बलं भुजयुगं स्पृष्ट्वा आमूलतः संवाहय, श्वासविकम्पिते धमनिभिः स्पष्टास्थिसंवेष्ठिते इमे पार्श्वे द्वाभ्यां कराभ्यां असकृत् मन्दं मन्दं पीडय ।

प्रिये ! मेरे पैर, नेत्र और छाती को झरने के पानी से सींच कर डगमगाती कमजोर दोनों बाँहें मूल से लेकर दबा तथा श्वास के कारण काँपते हुए और नाड़ियों सहित नजर आती हुई हड्डियों से घिरे हुए इन दोनों बगलों को धीरे २ बार २ दोनों हाथों से दबा ।

ब्राह्मणी--इतना ही तो मार्ग है, फिर (अंग २ पर) पीड़ा कैसे

तापसः–मुग्धे जराभिभूतानां प्राणिनां प्राणधारणमपि महाप्रयासः। किं पुनरपरचेष्टितानि।

ब्राह्मणी–जइ एव्वं सत्थे रि अक्खमो परत्थे केण आआसिदोसि (यद्येवं, स्वार्थेऽप्यक्षमः परार्थे केनायासितोसि।)

तापसः–आः अधर्म्मज्ञे, किं न पराश्रयिणः स्वार्थादपि परार्थो गरीयान्। पश्य,

पुत्राः पाण्डोर्भुवनजयिनः पूरुवंशप्रदीपाः
वृत्तैः सद्भिर्विजितमनवः पञ्च पञ्चेन्द्रकल्पाः।
शत्रुच्छद्मक्षपितविमलश्रीयशोमानभोगाः
भोगावासे वयसि मुनयः किं न कारुण्यदृश्याः॥

होगई ?

तपस्वी--प्रिये! बूढें आदमियों के लिए तो प्राण धारण करना भी अति दुस्वार है, फिर दूसरा कार्य तो दूर रहा।

ब्राह्मणी--मुनिवर! यदि ऐसा ही है कि आप अपने कार्य को भी सिद्ध नहीं कर सकते तो क्यों दूसरों के लिये (खां मुखां) तक़लीफ उठाते हो ?

तापस--ऐ! धर्म से अनबूझ! क्या ? परोपकारी के लिए परार्थ (दूसरे की भलाई) स्वार्थ से बढ़कर नहीं ? (अर्थात्-वह तो उस से उसी को उत्तम मानता है)

पुत्रा इति—भुवनजयिनः पूरुवंशप्रदीपाः सद्भिः वृत्तैः विजितमनवः पञ्चेन्द्रकल्पाः पाण्डोः पञ्च पुत्राः शत्रुच्छद्मक्षपितविमलश्रीशोमानभोगाः मुनयः भोगावासे वयसि कारुण्यदृश्याः, किं न (आसन्)?

देख, त्रिलोक विजयी, पुरुकुल-दीपक, सदाचरण में मनुओं से भी बढ़कर, पांच इन्द्रों के समान (अति शक्ति सम्पन्न) पाण्डु के पांच पुत्र--जो दुर्योधन के जाल में फंसकर अपनी पवित्र शोभा, कीर्ति, मान और ऐश से हाथ धो बैठे तथा इस ऐश लेने की अवस्था में मुनिवेश बनाये हुए हैं-क्या दया के योग्य (क़ाबिल) नहीं ? (अर्थात्-अवश्य हैं)

ब्राह्मणी–कहं पुण एसा जण्णसेणी एव्वं अणुकम्पणीयं भत्तारं अदिसाहसे णिओएदि।
(कथं पुनरेषा याज्ञसेनी एवमनुकम्पनीयं भर्तारं अतिसाहसे नियोजयति।)

तापसः–ननु तदेतद्वर्तते। हृदयं हि नाम कठिनवस्तुसमुच्चयः स्त्रीणाम्। तथाहि.

वनं प्रस्थापितः पुत्रो रामः सद्गुणभूषणः।
प्रापितो निधनं भर्ता केकयेन्द्रतनूजया॥

एहि तावत् सर्वथैनमतिसाहसान्निवर्तयिष्यावः।
(परिक्रम्यावलोक्य) हन्त व्यर्थो नः परिश्रमः।
य एषः,

बधिरयति जगन्ति शंखनादैः किरति महीमगमैर्गदावरुग्णैः।
अनुचरमपगर्वमेव कुर्वन् पितरमिवापहसन् जवेन याति॥

ब्राह्म०-तो फिर क्यों यह द्रौपदी इस प्रकार दया-योग्य स्वामी को ऐसे विकट कार्य में लगाती है?

तपस्वी--यह बात बिलकुल ठीक है कि-स्त्रियों का हृदय कठोर से कठोर वस्तुओं का ढेर है (अर्थात्-ये दुनियां की कठोर हैं) जैसे -

वनमिति—केकेयेन्द्रतनूजया सद्गुणभूषणः रामः वनं प्रस्थापितः (तथा) भर्त्ता निधनं प्रापितः।

केकेय नरेश की पुत्री (कैकेयी) ने उत्तम गुणों से शोभायमान प्यारा पुत्र राम (उस भयानक) वन में भेज दिया और अपने हृदयेश्वर (दशरथ) को मृत्यु के घर पहुंचा दिया (परन्तु जरा भी तरस न किया)।

चलो तो इसे जिस तरह हो सके इस कठिन कार्य से हटावें। (घूमकर देखता है) हा! शोक है, हमारा परिश्रम व्यर्थ हुआ। यह भीम तो—

बधिरयतीति—शङ्खनादैः जगन्ति बधिरयति, गदावरुग्णैः अगमैः

तदागच्छ। अग्निशरणं गत्वा व्यतीतकालं सप्रायश्चित्तं कर्म्म समापयावः।

(निष्क्रान्तौ)

(ततः प्रविशति गदया तरुभङ्गं नाटयन् आध्मायमान-शंखो भीमसेनः)

भीमः-एष भोः;

व्यायच्छन् गदया वने मृगकुलं शंखस्वनैस्त्रासय-
न्नुद्वेलीकृतसिन्धुरम्बुभिरुरःक्षिप्ताम्बुवाहस्रुतैः।
पाञ्चाल्या मनसः प्रियाणि कुसुमान्याहर्तुमिच्छन् गुरोः
संघर्षादिव गन्धमादनमहं शैलेन्द्रमारूढवान्॥

मह्रीं किरति, जवेन अनुचरं पितरं अपगर्वं एव कुर्वन् अपहसन् इव याति।

शंख की गर्जना से तीनों लोकों को बहरा बना रहा है, गदा की चोटों से वृक्षों को (उखाड़कर) जमीन पर फेंक रहा है, वेग में अपने पिता पवन को भी पिछाकर उसका अभिमान मिट्टी में मिला मानो उसकी हंसी उड़ाता हुआ बड़ी तेजी से भाग रहा है।

सो आओ अग्निशाला में जाकर व्यर्थ बिताये समय का प्रायश्चित्त (पापनाशन कर्म) समाप्त करें।

(दोनों चले जाते हैं)

(तब गदासे वृक्षों को तोड़ता हुआ और शंख बजाता २ भीम आता है)

भीम—अरे ! यह मैं—

व्यायच्छन्निति—गदया व्यायच्छन् वने मृगकुलं शङ्खस्वनैः त्रासय-न्, उरःक्षिप्ताम्बुवाहस्रुतैः अम्बुभिः उद्वेलीकृतसिन्धुः पाञ्चाल्या मनस प्रियाणि कुसुमानि आहर्तुम् इच्छन् अहं गुरोः संघर्षादिव गन्धमादनं शैलेन्द्रं आरूढवान् (अस्मीति शेषः)।

गदा से कसरत करता हुआ, वन में शंख की आवाज़ से मृगों के झुण्ड को डराता हुआ, छाती से टकराये बादलों से बरसे हुए पानी से समुद्र को बेहद उमड़ा कर द्रौपदी के मन भावने फूलों को लाने के लिये मानो

तदहमेषां प्रभवमन्विच्छामि । (परिक्रम्यावलोक्य) अहो भीरुजनदुरासदोयमचलोद्देशः। अत्रहि,

अन्तर्गुहोद्गतमहाजगरास्यदंष्ट्रा-
व्याकृष्टपादमुरुगर्जितमेष सिंहः।
दंष्ट्राग्रकृष्टपृथुकुम्भतटास्थिवल्गद्-
ग्रीवानिखातनखमाक्षिपति द्विपेन्द्रम्॥

यावदन्विच्छामि । अहो महानयं नयनोत्सवः। अत्रहि,

नृत्यन्ति क्वचिदत्र किन्नरवधूगीतस्वनानन्दितै-
र्वीणावेणुमृदङ्गनादमुदितैर्दैव्यो वृताः खेचरैः।
सस्त्रीकैः करबद्धरत्नचषकैरन्यत्र गोष्ठीगतैः
र्माद्यद्भिर्मधुरोपदंशमधुरैर्मैरेयमापीयते॥

पिता के साथ होड से (अर्थात्-वायु गन्धमादन पर पहुंचा हुआ था, उसकी स्पर्द्धा से भीम ने विचारा कि-मैं उसका पुत्र होकर उस के ऊपर न पहुंचा तो व्यर्थ है, क्योंकि—उत्तम पुरुष वही शास्त्रों में कहा है जो पिता के गुणों से बढ़ कर हो) पर्वतराज गन्धमादन के ऊपर चढ़गया।

सो मैं इन फूलों का उद्गमस्थान (उपज की जगह) तो तलाश करूं (घूमकर और देखकर) अहो! डरपोकों की इस पर्वत तक पहुंच नहीं। यहां तो—

अन्तर्गुहोद्गतेति—एष सिंहः अन्तर्गुहोद्गतमहाजगरास्यदंष्ट्रा-व्याकृष्टपादम् उरुगर्जितं दंष्ट्राग्रकृष्टपृथुकुम्भतटास्थिवल्गद्ग्रीवानिखातनखम् द्विपेन्द्रम् आक्षिपति।

यह शेर गुहा के अन्दर से निकले बड़े (भयङ्कर) अजगर की दाढ़ से पैर के खिंच जाने से चिंघाड़ते हुए, दाढ़ की नोकों से ज़ख्मी हुई मोटी २ गण्डस्थलों की हड्डियों से हिलती हुई गर्दन में चुभाये नाखूनों वाले हाथी को (बहुत बुरी तरह) खींच रहा है।

ज़रा! ढूंढ तो लूँ। अहा! कैसा बढ़िया नज़ारा है। यहां—

नृत्यन्तीति— अत्र क्वचित् किन्नरवधूगीतस्वनानन्दितैः वीणावेणु-

(परिक्रम्य क्वचिदानन्दाहृतदृष्टिरवलोक्य)

अहो तु खलु रमणीयवस्तुविषयाणामनन्तता रसान्तराणाम्। इहहि,

मणिफलकमनोज्ञस्वर्णडोलाधिरूढा
त्रिपुरजयिनिवद्धं गेयमावर्तयन्ती।
श्रवणयुगललोलत्कुण्डलामृष्टगण्डा
निगलयति गतिं मे मुग्धसिद्धांगनैषा ॥

किमेभिरधीरजनविस्मयनीयैः पदार्थैः। यावत् प्रियानियोगमनुतिष्ठामि। (स्पर्शसुखं रूपयन्) इह सन्निहितेन जलाशयेन भवितव्यम्। तथाहि,

---

मृदङ्गनादमुदितैः खेचरैः वृताः देव्यः नृत्यन्ति अन्यत्र गोष्ठीगतैः करबद्धरत्नचषकैः सस्त्रीकैः मधुरोपदंशमधुरैः मैरेयम् आपीयते।

एक तरफ किन्नरों (देवयोनिविशेष) की स्त्रियों के गान से हर्षाये, बीन, बन्सी मृदङ्गों की ध्वनि से प्रसन्न हुए, देवों से घिरीं अप्सराएं नाच रहीं हैं। दूसरी ओर स्त्रियों समेत रत्न-जटित शराब के प्याले हाथ में लिये मण्डली बनाकर मस्त हो गन्धर्व शराब पीरहे हैं।

(घूमकर और आनन्द से दृष्टि के खींच जाने पर दूसरी तरफ देखता है)

अहो। यहां सुन्दर वस्तु सम्बन्धी तरह २ के रसों का क्या अन्त है ? यहां भी—

मणिफलकेति—मणिफलकमनोज्ञस्वर्णडोलाधिरूढा श्रवणयुगललोलित्कुण्डलामृष्टगण्डा त्रिपुरजयिनिबद्धं गेयम् आवर्तयन्ती एषा मुग्धसिद्धाङ्गना मे गतिं निगलयति।

यह सिद्धों की स्त्री मणि के फलक (तख्ते) से सुहावने सोने के हिन्डोले में बैठी, शिवजी का गाना गाती हुई, मुझे आगे नहीं बढ़ने देती क्योंकि—इसके कानों में कुण्डल लटक रहे हैं जो इसके कपोलों को स्पर्श कर रहे हैं, (जिस से मेरा चित्त नहीं चाहता मैं आगे बढ़ूं)

अरे! इन चञ्चल पुरुषों को विस्मित करने वाले पदार्थों से हम

अयं हि सौगन्धिकगन्धमावहन्
शनैः शनैः सान्द्रतुषारशीतलः।
परिष्वजन्मे जनको यथा सुखं
करोति रोमाञ्चसमाचितां तनुम्॥

इदं हि तद्दिव्यसरः। यावदुपसर्पामि। अये मां दृष्ट्वा दण्डपाणिरयमन्तकः प्राप्त इति वदन्तः सरोरक्षिणो यक्षराक्षसगणा भीता पलायन्ते।

(पुनर्निरूप्य) अहो रामणीयकमस्य जलाशयस्य। इहाह,

हैमाः स्वच्छे पयसि निकराः पद्मसौगन्धिकानां
नालैः शुभ्रैर्मरकतमयैर्वैद्रुमैश्चाभिरामाः।

सरीखे शूरों का क्या मतलब? प्यारी द्रौपदी की आज्ञा तो पूरी करूं (स्पर्श के सुख का अभिनय करता हुआ) यहां कहीं नज़दीक अवश्य तालाब है। क्योंकि–

अयं हीति—हि अयं सौगन्धिकगन्धम् आवहन् सान्द्रतुषारशीतलः मे जनकः शनैः शनैः यथा सुखं परिष्वजन् तनुं रोमाञ्चसमाचितां करोति।

यह बर्फ की नाईं अति शीतल, सुगन्धिमय कमल की गन्ध को धारण करता हुआ मेरा पिता (वायु) मेरे शरीर को धीरे २ सुख पूर्वक स्पर्श कर हर्षित कर रहा है।

(थोड़ी दूर जाकर) अहा! यही तो वह तालाब है। अच्छा! पास जाता हूं। अरे! मुझे देखकर "हाथ में डण्डा लिये यमराज आपहुंचा,, यह कहते हुए तालाब के रखवारे यक्ष राक्षस डर के मारे भाग रहे हैं।

(दूसरी बार देखकर) वाह! वाह! इस तालाब की कितनी सुन्दरता है। इसके तो—

वप्रेष्वच्छस्फटिकरचितेष्वावृता च्छाययामी
संलक्ष्यन्ते मधुरसजुषामारवैः षट्पदानाम् ॥

तद्यावदुपसर्पामि। (उपसृत्य पुष्पावचयं कृत्वा सगर्वं)

कुसुमानि हराम्येष बाहुवीर्यमुपाश्रितः।
यदि शक्तः पुमान् कश्चिन्निवारयतु मामिह ॥

(नेपथ्ये)

आः दुरात्मन अतिकठिनहृदय करुणारसानभिज्ञ कपटकृतसकलदुर्बलजीवलोकजीवग्रहणसमुद्भवस्य दुरितसञ्चयस्य फलमिदानीमनुभूयतामलकेश्वरस्य सरस्सारभूतसौगन्धिकापहरणसमुद्दीपितक्रोधेन क्रोधवशेनोपनीयमानम्।

हैमा इति।—स्वच्छे पयसि मरकतमयैः वैद्रुमैश्च नालैः अभिरामाः अमी पद्मसौगन्धिकानां हैमाः निकराः अच्छस्फटिकरचितेषु वप्रेषु छायया आगताः मधुरसजुषाम् षट्पदानाम् आरवैः संलक्ष्यन्ते। (संरक्ष्यन्ते)।

निर्मल जल में सोने के से रङ्गवाले सुगन्धित कमलों के समूहों में जो कमल समूह मरकत मणि और पल्लव की भांति शुभ्र नाल से अति सुन्दर मालूम पड़ते हैं और स्वच्छ स्फटिक पत्थर (शंखमरमर) से बनी हाते की दीवारों में परछाईं रूप से प्राप्त हुए हैं—मीठा २ रस चाखन हारे भौंरे गुञ्जार रहे हैं।

सो समीप जाता हूं (समीप जाकर फूल चुनकर घमण्ड के साथ बोलता है)

कुसुमानीति—एष बाहुवीर्यम् उपाश्रितः कुसुमानि हरामि, यदि इह कश्चित् पुमान् शक्तः मां निवारयतु।

यह मैं भुजाओं के बल पर फूल चुनता हूं, यदि किसी की हिम्मत पड़ती है तो मुझे रोके।

(नेपथ्य में)

ऐ! पापी! क्रूरहृदय! निर्दय! छल से दीन दुःखी जीवों के प्राण

(ततः प्रविशति खड्गहस्तः सक्रोधो राक्षसः)

राक्षसः—(आः दुरात्मन्निति पूर्वोक्तमेव पठति) इहहि,

दुष्कर्म्मसञ्चयकृतागसि जीवलोके
जीवग्रहोत्सवरतः किल गर्वितस्त्वम्।
अस्मिन् क्षणे निशितखड्गनिकृत्तदेहं
त्वामन्तकान्तिकरसङ्गमहं करिष्ये ॥

भीमः—राक्षस किमिदं प्रलप्यते। क्वासावन्तकः।

राक्षसः—(सावधानं निर्वर्ण्य) आः मानुषः खल्वेषः। (अपविद्धायुधः स्थित्वा पुनः खड्गमुद्धृत्य) रे रे मानुषापसद।

हरने से पैदा हुए पाप के बोझे के फल को—जिसे कुबेर के तालाब के सारभूत सुगन्धित कमल फूलों के हरने से भड़के हुए क्रोध वाला क्रोधवश नामक राक्षस समीप ला रहा है—भोग (अर्थात्—वह तुझे अभी मार डालता है)।

(तब हाथ में तलवार लिये गुस्से में भरा राक्षस आता है)।

राक्षस—(आः दुरात्मन्! इत्यादि पहिले की भान्ति पढ़ता है)। यहां

दुष्कर्मेति।—दुष्कर्मसञ्चयकृतागसि जीवलोके किल त्वम् जीवग्रहोत्सवरतः गर्वितः (असि) अस्मिन् क्षणे अहं त्वाम् निशितखड्गनिकृत्तदेहं अन्तकान्तिकरसङ्गं करिष्ये।

अनेक बुरे कर्म करने से पापी संसार में तू लोगों के जीवन लेता आया है, और इसी लिये तुझे बहुत घमण्ड हो गया है, परन्तु अब तेज तलवार से तेरे शरीर के टुकड़े २ कर तुझे यमराज के पास भेजता हूँ।

भीम—अरे! राक्षस! यह क्या बकवास करता है? वह यमराज है कहां?

राक्षस—(गौर से देखकर) ओह! यह तो मनुष्य है। (थोड़ी देर तक विना हथियार का (चुपचाप) खड़ा रहता है फिर हथियार

खड्गेन क्षतविग्रहस्य पिशितैः क्लृप्तोपदंशोत्तरं
कोष्णं ते रसयन् कपालचषकेणाकण्ठमस्रासवम् ।
आन्त्रस्रग्गुणमुद्वहन् विरचयन्नेपथ्यमस्थिव्रजै-
र्नृत्यन्मत्तविलासजां धनपतेः प्रीतिं करिष्याम्यहम् ॥

भीमः—मन्ये मृतविलासजां शुचं करिष्यतीति ।

राक्षसः—हहह आहारभूताः खलु मनुष्या राक्षसानाम् । हनिष्यन्तीति मन्ये ।

भीमः—राक्षस किं न मनुष्यो रामः ।

राक्षसः—मूढ़ किं किं राममपि मनुष्यं मन्यसे । किं नासौ नारायणो देवः ।

उठाकर) अरे ! रे ! नराधम ! अभी देख !

खड्गेनेति—खड्गेन क्षताविग्रहस्य ते पिशितैः क्लृप्तोपदंशोत्तरं कपालचषकेण कोष्णम् अस्रासवम् आकण्ठं रसयन्, आन्त्रस्रग्गुणम् उद्वहन् अस्थिव्रजैः नेपथ्यं विरचयन्, नृत्यन् अहं मत्तविलासजां धनपतेः प्रीतिं करिष्यामि ।

तलवार से तेरे शरीर के टुकड़े २ कर तेरे मांस से शराब के साथ का भोजन (कबाब) तैय्यार करता हूँ, गरम २ तेरे खून रूपी शराब को तेरी खोपड़ी के प्याले से पीता हूँ, तेरी अन्तड़ियों का माला का सूत्र बनाता हूँ हड्डियों के ढेर से अपने को सजाता हूँ, और नाचता हुआ इस अनोखे वेश से कुबेर को आनन्द में मस्त बना देता हूँ (अर्थात्–मैं तुझे मारकर अभी चट कर जाता हूँ, और तेरे अंगों से अपना ठाठ बनाता हूँ जिससे कुबेर मस्त होकर खुशी मनाए) ।

भीम—मैं तो समझता हूँ, मरने के कारण शोक करेगा ।

राक्षस—अहह ! राक्षसों के भोजन स्वरूप (अर्थात्–प्राणों का गुज़ारा) मनुष्य राक्षसों को मारेंगे मैं मानता हूँ ।

भीम—राक्षस ! क्या राम मनुष्य नहीं थे ?

राक्षस—मूर्ख ! क्या ! क्या ! राम को भी मनुष्य समझता है ?

भीमः—यद्येवं, अहमपि समीरणो देवः ।

राक्षसः—अनृतमेतत् किं देवो देवस्यापराधमाचरति । अथवा,

समीरणस्त्वं भव भूमिरम्बरं
भवाम्बु तेजोऽथ समस्तमेव वा ।
अनेन खड्गेन शिरस्तु ते क्षणा-
न्निपातयिष्यामि धनाधिपद्विषः ॥

भीमः—किं किं रे रे राक्षसकीटक,

गुप्ता राक्षसपुंगवं हतवता येनैकचक्रा बकं
प्राप्ता येन घटोत्कचस्य जननी हत्वा हिडिम्बं क्षणात् ।
यः कुम्मीरमपि क्षणान्मृदितवानग्रेसरं रक्षसां
तस्य त्वं मम दुर्मते वद शिरः खड्गेन किं छेत्स्यसि ॥

क्या वे भगवान् नारायण नहीं थे ?

भीम—यदि ऐसा कहता है तो मैं भी पवनदेव हूं ।

राक्षस—यह झूठ है, क्या देवता देवता की बुराई करता है?अथवा

समीरणस्त्वमिति—(चेत्) त्वं समीरणः (असि) भूमिः अम्बरं भव, अथ अम्बु तेजः समस्तमव वा भव, क्षणात् अनेन खड्गेन धनाधिपद्विषः ते शिरः निपातयिष्यामि ।

चाहे तू पवन देव है अथवा पृथ्वी, आकाश, जल, या तेज है या चारों का ही स्वरूप है, लेकिन है तू कुबेर का वैरी, सो तेरा शिर इस (तेज) तलवार से (धड़ से अलग किये देता हूं ।

भीम—क्या ? क्या ? अरे ! रे ! क्षुद्र राक्षस !

गुप्तेति—येन राक्षसपुंगवं हतवता एकचक्रा पुरी गुप्ता, येन क्षणात् हिडिम्बं हत्वा घटोत्कचस्य जननी प्राप्ता, यः रक्षसाम् अग्रेसरं कुम्मीरमपि क्षणात् मृदितवान्, दुर्मते वद, किं तस्य मम त्वं खड्गेन शिरः छेत्स्यसि ।

जिसने राक्षसों में श्रेष्ठ बकासुर को मार कर चक्रापुरी की रक्षा की, जिसने बातकी बात में हिड़िम्ब राक्षस को मारकर घटोत्कच की माता (हिडिम्बा राक्षसी) प्राप्त की और इसी तरह जिसने राक्षसों के अगुआ

राक्षसः—अतः परं खड्गस्ते कथयिष्यति । (उभौ युद्धं कुरुतः) (गदया भग्नः प्रहरणमपविध्य सभयं पलायमानो निष्क्रान्तो राक्षसः)

(नेपथ्ये)

क्षेत्रे पाण्डोरयं जातो मारुताद्भुवनायुषः ।
स्वैरं हरतु भीमोयं कुसुमानि प्रियाकृते ॥

भीमः—अनुगृहीतोऽस्मीदानीम् । (इति प्रतिनिवृत्तः) (ततः प्रविशति प्रियया सह विद्याधरः) (उभौ मारुतपीडां रूपयतः)

विद्या—प्रिये गुणमञ्जरि,

कृम्मीर को भी मसल दिया, ऐ ! मूर्ख ! उसी का (मेरा) तू तलवार से शिर काटना चाहता है ?

राक्षस—बस ! शेष तलवार ही जवाब देगी ।

(दोनों युद्ध करते हैं)

(गदा की चोट खाकर हथियार को छोड़ डर के मारे भागता हुआ राक्षस वहां से कूच कर जाता है) ।

(नेपथ्य में)

क्षेत्र इति—भुवनायुषः मारुतात् पाण्डोः क्षेत्रे जातः अयं भीमः मे कुसुमानि प्रियाकृते स्वैरं हरतु ।

यह भीम संसार के जीवनभूत वायु से पाण्डु की स्त्री (अर्थात कुन्ती) में पैदा हुआ है । यह प्रिया द्रौपदी के लिए फूल इच्छानुसार (आजादी से) ले जा सकता है ।

भीम—मेरे ऊपर बड़ी कृपा (मेहर्वानी) की (इस प्रकार कहकर वापिस लौट जाता है) (तब अपनी प्यारी के साथ गन्धर्व आता है) दोनों हवा से तंग आजाते हैं ।

विद्या० प्यारी ! गुणमञ्जरी !

तिर्यग्विकम्पयति घूर्णयते मुहुर्नौ
डोलीकरोति च गतागतमादधानः।
वप्रैरयं प्रतिहतः पवनः सुमेरोः
शृंगान्तरे मधुमदस्य करोति लीलाम् ॥

गुणम—(ससम्भ्रमम्) णाह मं गरह मं गरह इमिणा दुव्विणीदेण मारुदहदएण परिचीअमाण (भोणो-ल्लवाणा अवैरिणा जव एसो ण मारेइ ?)
[नाथ गृह्णीष्व मां गृह्णीष्व। अनेन दुर्विनीतेन मारुत-हतकेन परिचीयमान.......................................?]

विद्या—प्रिये एष गृह्णामि, (ग्रहणं नाटयित्वा)
अवहितहृदयाक्षं व्यायतोद्घूर्णबाहु-
द्वितयमभिपतन्तीं त्वां विलोलां गृहीतुम्।
सततगतिरयं मां दुर्निवारप्रवृत्ति-
र्विधिरिव विपरीतो वन्ध्ययत्नं विधत्ते ॥

तिर्यग्विकम्पयतीति—अयं पवनः सुमेरोः शृङ्गान्तरे वप्रैः प्रतिहतः नौ तिर्यग् विकम्पयति मुहुः घूर्णयते गतागतम् आदधानः च डोलीकरोति, मधुमदस्य लीलां करोति।

यह वायु सुमेरु पर्वत की चोटियों से टकरा कर हम दोनों को (कभी) तिरछा कम्पाता है। (कभी) जाता आता हिंडोले की भान्ति हमें हिलाता है (अर्थात्-जब वायु जोर से चलता है तो हमें दूर ले जाता है और जब उधर से चलता है तो उड़ा कर हमें उसी जगह पर ले आता है, (जिससे हमारी हिंडोले झूलने की हालत होजाती है) या शराबी की सी चेष्टायें कररहा है।

गुण-(संभ्रम सहित) नाथ ! पकड़िये ! मुझे पकड़िये ? यह दुष्ट नीच वायु सर्पों के वैरी की नाईं दुखित कर ...जब तक नहीं मार डालता।

विद्या---यह मैं पकड़ने लगा (पकड़ना दिखाकर)

अवहितेति—दुर्निवारप्रवृत्तिः सततगतिः विधिरिव विपरीत. अयं

दानीं
किमिद्नी करिष्ये । भवतु । दृष्टम् भोः प्रभञ्जन,

भवन्मित्रस्य शक्रस्य शासनात्तव पुत्रयोः ।

हनुमद्भीमयोः कर्तुं कल्याणं गम्यते मया ॥

अये अनुकूलः संवृत्तः ।

गुणम—णाह किण्णामहेओ एसो दुठ्ठमारुओ [नाथ किन्नामधेय एष दुष्टमारुतः ।]

विद्या—सप्तर्षिमण्डलग्रहाणामन्तरस्कन्धवर्ती चण्डवेगः परावहो नाम ।

गुणम—(अधोविलोक्य) णाह किमिदं छत्तमत्तपरिमाणं लक्खीअदि । [नाथ किमिदं छत्रमात्रपरिमाणं लक्ष्यते ।]

विलोलां अभिपतन्ती त्वां गृहीतुम् अवहितहृदयाच्चं व्यायतोद्घूर्णबाहुद्वितयं मां वन्ध्ययत्नं विधत्ते ।

मैं अपनी कुछ भी परवाह न कर दीर्घ भुजाओं के बल से हवा से हिलती हुई तुम्हें पकड़ने का प्रयत्न कर रहा हूं, लेकिन यह वायु तो भाग्य के सदृश दुर्निवार है और इसी लिए मेरे प्रयत्न को व्यर्थ कर रहा है जैसे-भाग्य के सामने किसी की नहीं चलती उसी प्रकार वायु से मेरी कुछ नहीं बनती ।

अब क्या करूं ? अच्छा ! देखलिया । ऐ ! पवन देव !

भवदिति—भवन्मित्रस्य शक्रस्य शासनात् तव पुत्रयोः हनुमद्भीमयोः कल्याणं कर्तुं मया गम्यते ।

आपके मित्र इन्द्र की आज्ञा से आपके पुत्र भीम और हनुमान् का कल्याण करने के लिए जारहा हूं ।

अहो ! अब तो पवन हमारे अनुकूल (धीमा) पड़गया ।

गुण०—स्वामिन् ? इस दुष्ट वायु का क्या नाम है ? ।

विद्या०—प्रिये ! यह सप्तर्षि मण्डल के नक्षत्रों के बीच बहने वाला अति तेजगति परावह नामक वायु है ।

गुण०—स्वामिन् ? यह छाते जितना (घेरा सा) क्या दिखाई देता है ?

विद्या—इदमपि दूरत्वादविभावितविस्तारमवनिचक्रम् । यावदव-
तरावः ॥

गुणम—णाह पेक्ख पेक्ख, गुम्मा दीसन्ति ।] नाथ पश्य पश्य, गुल्मा दृश्यन्ते ।

विद्या—मुग्धे नैते गुल्माः । पर्वताः खल्वमी । अवतरावः (अव-
तरणं नाटयतः)

गुणम—अम्मो इदं महत्तं सव्वुत्तम् । (अवतीर्य दृष्ट्वा) [अम्मो अयं महान् संवृत्तः ।] किएणामहेओ एसो पव्वओ । [किन्नामधेय एष पर्वतः ।]

विद्या—निषधोयमनुप्राप्तः,

गुणम—एसो को । [एष कः]

विद्या—हेमकूटोयमास्थितः ।

गुणम—अअं अवरो को । [अयमपरः कः]

विद्या—हिमवानयमासन्नः,

विद्या०—यह पृथ्वी मण्डल है जिसका फैलाव दूर से मालूम नहीं पड़ता। अच्छा ! अब उतरते हैं

गुण—नाथ ! देखिये २, वृक्ष और लताओं के समूह नजर आरहे हैं।

विद्या०—ऐ ! भोली! ये वृक्ष और लताओं के समूह नहीं ये तो पर्वत हैं । उतरें। (उतरना दिखाते हैं)

गुण—(उतर कर देखती है) आश्चर्य है, यह(पर्वत)तो अब बड़ा दिखाई देरहा है। इस पर्वत का क्या नाम है ?

विद्या—यह निषिध पर्वत आगया ।

गुण—यह दूसरा कौन है ?

विद्या—यह हेम कूट पर्वत है।

गुण—यह तीसरा कौन है ?

विद्या—यह हिमालय निकट आपहुंचा ।

गुणम—(अधो विलोक्य) किं एदं सरदम्भाणं विअ समूहो दीसइ। किमेतत्, शरदभ्राणामिव समूहो दृश्यते।]
विद्या—कैलासोत्र विराजते॥
अत्र भगवन्तमन्तकान्तकं प्रणम्य यास्यावः।
नमोस्तु सकलजगदैश्वर्यश्लाघनीयाय।
मुग्धेन्दुशेखरपिशंगजटाधराय
स्निग्धेन्द्रनीलमणिनीलगलान्तराय।
दुग्धोदफेनपटलामलभस्मधूली-
दिग्धाय दग्धमदनाय नमः शिवाय
गुणम--णमो पव्वईवद्धप्पणआअ। [नमः पार्वती बद्धप्रणयाय।]
विद्या—विलासिनि ! सोयमासादितो गन्धमादनः, यत्रास्ते हनुमान्।

गुण--(नीचे देखकर) यह शरत्-कालीन बादलों की सी घटा क्या नजर आती है ?

विद्या--यह कैलास पर्वत है। यहाँ भगवान् शिव को नमस्कार कर चलेंगे। सम्पूर्ण जगत् के सम्पत्ति स्वरूप और पूजनीय शिव जी के लिए नमस्कार हो

मुग्ध इति—मुग्धेन्दुशेखरपिशङ्गजटाधराय स्निग्धेन्द्रनीलमणिनी-लगलान्तराय दुग्धोदफेनपटलामलभस्मधूलीदिग्धाय दग्धमदनाय शिवाय नमः।

बाल चन्द्रमा से (शोभायमान) मस्तक पर पिशङ्ग जटाधारी, चिकने इन्द्रनील मणि के समान नील कण्ठ, दूध में उठे फेन के समान (शुभ्र) स्वच्छ भस्म रमाये हुए, और कामदेव को जलाने वाले शिव को नमस्कार हो।

गुण--पार्वती-वल्लभ (महादेव जी) को नमस्कार हो।

विद्या—विलासिनि ! अब हम गन्धमादन पर्वत पर आपहुंचे, जहाँ हनुमान् रहता है।

गुणम—अम्मो इह वि सुवद्धसिणेहा आअदा सग्गलच्छी दीसइ [अम्मो इहापि सुवद्धस्नेहा आगता स्वर्गलक्ष्मीर्दृश्यते :]

विद्या—सत्यमाह भवती। इहहि,

प्रासादैरमृताम्बुफेनधवलैः संरुद्धतारागणै
र्हैमैर्मौक्तिकमालिकापरिगतप्रान्तैर्गृहैर्भूषिता।
रागानन्दितखेचरैर्वरवधूगीतैर्मनोहारिणी
स्वर्गश्रीरलकेति नाम्नि नियतो भेदो न वस्तुस्थितौ ॥

गुणम—(सभयं) णाहको णु खु एसो सजलजलहरत्थणिअगम्भीरो सद्दो मं पीडेइ। [नाथ को नु खल्वेष सजलजलधरस्तनितगम्भीरः शब्दो मां पीडयति।

विद्या—(ससम्भ्रमवलोक्य) प्रिये पश्य पश्य,

गुण—अहो ! यहां भी मानो प्रेमासक्त (मोहित) हो स्वर्ग की लक्ष्मी आपहुंची।

विद्या—आप सच कहती हैं, यहाँ-

प्रसादैरिति—अमृतांशुफेनधवलैः संरुद्धतारागणैः प्रसादैः मौक्तिकमालिकापरिगतप्रान्तैः हैमैः गृहैः भूषिता, रागानन्दितखेचरैः वरवधूगीतैः मनोहारिणी अलका स्वर्गश्री इति नाम्नि नियतः वस्तुस्थितौ भेदः न (अस्ति)।

अमृत और जल के फेन के समान सुफेद आकाश के तारों को रोकने वाले (अर्थात् अति ऊँचे) महलों से तथा मोतियों की मालाओं से चारों ओर घिरी हुई चोटियों वाले सोने के से घरों से शोभायमान, और राग से गन्धर्वों को प्रसन्न करने वाले वर वधुओं के (मधुर) गीतों से चित्त चुराने वाली यह अलका स्वर्ग पुरी ही है केवल नाम में ही भेद है, सजावट में नहीं (अर्थात् यह अलका और स्वर्ग पुरी एक ही है नाम मात्र केवल भिन्न है।

गुण—(भय के साथ) स्वामिन् यह कौन जल सहित बादलों की गर्जना की भान्ति गम्भीर शब्द मुझे दुःखित कर रहा है?

(हड़बड़ी के साथ देखकर) प्रिये ! देख ! देख !

गर्जन्तं घनमुपरि द्विपेन्द्रशङ्की
दन्ताभ्यामभिनिनदन् विभिद्य वेगात्।
आमूलं महति महीरुहे निखातौ
नोत्क्रष्टुं प्रभवति तौ पुनर्द्विपेन्द्रः॥

गुणम--हद्धि वलगव्विदाणं पमादो। [हा धिक् वलगर्वितानां प्रमादः।]

विद्या--सखि एष भीमस्तस्य कपीश्वरस्य कदलीवनमुपसर्पति। तदस्य निकटवर्तिस्फटिकशिलातलमध्यासीनावेतयोरविज्ञातपुरस्सरयोः प्रभावान्तर्हितौ चेष्टितमवगम्य तदनुरूपमुपसर्पावः। अपिच,

शुष्यद्दन्तच्छदकिसलयं तान्तताम्रायतोष्ठं
स्वेदैः किञ्चित्क्षालिततिलकं गण्डयोर्वद्धरागम्।
वक्त्रं जालैर्ग्लपितमदयैस्तिग्मभासः प्रभाणां

गर्जन्तमिति—द्विपेन्द्रशङ्की द्विपेन्द्रः उपरिगर्जन्तं घनं अभिनिनदन् वेगात् दन्ताभ्यां महति महीरुहे आमूलं विभिद्य पुनः तौ निखातौ उत्क्रष्टुं न प्रभवति।

ऊपर (आकाश में) गर्जते हुए बादल को सुनकर अन्य हाथी की शङ्का से चिंघाड़ता हुआ कोई हाथी दान्तों के द्वारा जड़ से वृक्ष को बड़े वेग से चीर कर बहुत भारी वृक्ष में चुभाये दान्तों को बाहर नहीं निकाल सकता।

गुणम—हां! धिक्कार है! अभिमान में चूर हुए मनुष्यों की लापरवाही (तो देखो)।

विद्या—प्रिये! यह भीम उस बानरराज के कदली (केलों के) वन की ओर जा रहा है, सो हम दोनों इस नज़दीक की स्फटिक शिला में बैठकर (अपनी अदर्शिनी विद्या के) प्रभाव से नज़र न आते हुए इन दोनों का—जो आपस में एक दूसरे को नहीं पहिचानते--व्यवहार देखकर उसके मुताबिक ही समीप चलेंगे। दूसरी यह भी बात है कि—

येलामेनामिह सुतनु ते विश्रमं वाञ्छतीव ॥

(अन्तर्हितौ तिष्ठतः ।)

भीमः--अहो ! प्रियाभिलाषपरिपूरणार्थमतित्वरितस्यापि मम नयनयुगलमवशमाकर्षति नगवनोद्देशः ।

वातेरितप्रचलनीलदलाकुलोयं
पक्वैः फलैः शवलितः कदलीवनान्तः ।
आभाति विद्रुमलताविटपैः प्रभिन्न--
स्त्वङ्गत्तरङ्गपरिकीर्ण इवाम्बुराशिः ॥

शुष्यदिति--हे सुतनु, शुष्यद्दन्तच्छदकिसलयं तान्तताम्रायतोष्ठं स्वेदैः किञ्चित् लुलिततिलकं गण्डयोः बद्धरागं तिग्मभासः प्रभाणां अदयैः जालैः ग्लपितं ते वक्त्रम् इह एनां वेलां विश्रमं वाञ्छति इव ।

सूर्य की प्रचण्ड किरणों से मुर्झाया तेरा मुख--जिसका ओठ रूपी पल्लव सूखता जा रहा है, लाल २ ओठ कुम्हला (कांप) रहा है, पसीने से थोड़ी तिलक मिट गई है, कपोलों पै लालिमा छागई है--यहां इस समय आराम सा करना चाहता है।

(दोनों छिप जाते हैं)

भीम--यद्यपि मैं प्यारी की मनोकामना को पूरी करने के लिए शीघ्रता कर रहा हूं तथापि पर्वत का वन विभाग मेरी दृष्टि को जबरदस्ती अपनी ओर खींच रहा है।

वातेरितेति--वातेरितप्रचलनीलदलाकुलोऽयं पक्वैः फलैः शवलितः अयं कदलीवनान्त विद्रुमलताविटपैः प्रभिन्नत्वङ्गत्तरङ्गपरिकीर्णः अम्बुराशिः इव आभाति ।

हवा के कँपाने से हिलते हुए नीले पत्तों से व्याप्त (भरा), पके हुए फलों से रङ्गविरङ्ग, और विद्रुम (नये २ पत्ते या मूंगे) लता तथा वृक्षों से सुशोभित, यह कदली वन उठती हुई तरङ्गों से व्याप्त समुद्र सा जान पड़ता है।

यावदुपसर्पामि। (उपसृत्य परितो विलोकयन्) मन्ये कस्यचिदयं महानुभावस्य परिग्रहः। न किञ्चिन्मृगपक्षिभिरपि परिणतं फलमवलुप्यते। किन्तत्, क्षात्रं तेजः येन परतेजः प्रकर्षो मृष्यत इति। नचास्य सुयोधनस्येव विग्रहे गुरुवचनान्तरायः। तदस्य मानशृङ्गमुत्पाट्य यास्यामि। (नाट्येनोत्पाट्य) भोः,

यद्यस्ति कश्चिदिह शक्तिकृताभिमानः
काङ्क्षेत्पुरं यदि परेतपतेः प्रयातुम्।
स प्रोल्लसद्भ्रुकुटिभीमललाटभूमे--
श्चण्डक्रुधः पततु मे पुरतः क्षणायुः॥

(नेपथ्ये)

अच्छा (इसके) नजदीक जाता हूँ (नजदीक जाकर इधर उधर देखता है) अहो? मै समझता हूं यह किसी प्रतापी पुरुष का निवास स्थान है। (क्यों कि) यहां कोई भी पका फल ऐसा नहीं जो मृग और पक्षियों का खाया हो, तो क्या क्षत्रिय तेज ऐसा है कि दूसरे के तेज को सह सके? और यहां तो दुर्योधन से लड़ने में जैसे गुरु (युधिष्ठिर) का वचन (आज्ञा) बधक था वैसे कोई बाधक भी नहीं। इस लिये मैं इसके घमंड को चूर २ कर ही जाऊंगा। अरे

(उखाड़ता हुआ सा)

यद्यस्तीति—यदि इह कश्चित् शक्तिकृताभिमानः अस्ति, (यदि कश्चित्) परेतपतेः पुरं प्रयातुं कांक्षेत्, स प्रोल्लसद्भ्रुकुटिभीमवक्षेः चण्डक्रुधः मे पुरतः क्षणायुः सन् पततु।

अगर यहां कोई अपनी शक्ति का घमण्ड रखता हो और (शीघ्र) यमराज के घर जाया चाहता हो तो वह कमवक्त भृकुटी चढ़ाने के कारण भयङ्कर (मस्तक वाले अति क्रोधित मेरे सामने आपहुचें।

(नेपथ्य में)

आः दुरात्मन् अनात्मज्ञ पराज्ञासमुल्लङ्घनपर अपरिज्ञात-प्रकृष्टपुरुषबलपराक्रमप्रभाव अतिक्रान्तमर्याद क्रूरकर्मनिरत मानुषापसद दुर्विनीत किमियन्तं कालं न श्रुतिपथमुपगतवानस्मि।

भीम—अयमयं भोः,

दृढविरचितमुष्टिर्दृष्टिभासां वितानै—
र्वियदधिकपिशङ्गैः सेन्द्रचापं प्रकुर्वन्।
भ्रुकुटियुतललाटः स्पष्टदंष्ट्रांशुजालै—
रपर इव नृसिंहो दृश्यते वानरेन्द्रः॥

(ततः प्रविशति हनुमान्)

हनु—(सक्रोधं आः दुरात्मन्निति पूर्वोक्तमेव पठित्वा) तदधुना,

अरे! दुष्ट! अनात्मज्ञ! दूसरे की आज्ञा भङ्ग करने वाले! सूरमा पुरुषों के बल, पराक्रम, और रोबदाब के अनभिज्ञ! मर्यादा के तोड़ने वाले भयंकर कार्य में लगे हुए नराधम! बेतमीज! क्या इतने समय तक तूने मेरा नाम नहीं सुना?

भीम—अरे यह है, यह है!

दृढ़विरचितेति—दृढविरचितमुष्टिः अधिकपिशंगैः दृष्टिभासां वितानैः वियत् सेन्द्रचापं प्रकुर्वन् भ्रुकुटियुतललाटस्पष्टदंष्ट्रांशुजालैः वानरेन्द्रः अपरः नृसिंह इव दृश्यते।

मज़बूती से मुट्ठी बन्दकर दृष्टि की चमक के पीले २ समूहों से आकाश को इन्द्र धनुष युक्त बनाता हुआ कपाल में भौं चढाए यह वानरेन्द्र दाढ के स्पष्ट किरन समूह से ऐसा मालूम पड़ रहा है कि दूसरा नृसिंह हो।

(तब हनुमान प्रवेश करता है)

हनुमान—(क्रोध के साथ ऐ! दुरात्मन्! इस प्रकार पहिले की नाईं पढ़ता है) अब पल भर में-

श्लक्ष्णप्रपिष्टवपुषं भुवि मुष्टिपातै--
रल्पप्रयासहृतजीवितमन्तकेन।
अक्ष्णोर्निमेषसमकालमहं करोमि
क्रव्याददन्तसुखचर्वितकीकसं त्वाम् ॥

भीम-अहो हास्यमभिधानम्। वानरः किल मामेवं करिष्यति

हनु-किं किं वानर इत्यवज्ञा। हन्त भोः,

स्वैरं गोष्पदवद्विलङ्घ्य जलधिं नक्तञ्चराणां गणान्
हत्वैरावतदन्तकोटिलिखितैर्वक्षःस्थलैर्भीषणान्।
प्लुष्टा येन पुरा करैर्दिनकृताप्यस्पृष्टपूर्वा भया—
लङ्का किन्न स वानरो वद जगत्यस्मिन् नवा विश्रुतः ॥

श्लक्ष्णेति—अहं अक्ष्णोर्निमेषसमकालं त्वां भुवि मुष्टिपातैः श्लक्ष्ण-प्रपिष्टवपुषं अन्तकेन अल्पप्रयासहृतजीवितं क्रव्याददन्तसुखचर्वितकीकसं करोमि।

मैं जमीन पै तेरे शरीर को मुष्टिकाओं से ऐसा बारीक पीस देता हूं (अर्थात् घायल करदेता हूँ) कि—यमराज आसानी से तेरे जीवन को हर सके और राक्षस दान्तों से सुख पूर्वक तेरी हड्डियों को चवा सकें।

भीम—क्या ही हंसी की बात है? बन्दर, और मुझे इस तरह करेगा क्या यह हो सकता है?

हनु—क्या! क्या बन्दर कहकर मेरा अपमान करता है। अरे! बड़े अफसोस की बात है—

स्वैरमिति—स्वैरं जलधिं गोष्पदवद्विलंघ्य ऐरावतदन्तकोटिलिखितैः वक्षःस्थलैः भीषणान् नक्तञ्चराणां गणान् हत्वा, पुरा भयात् दिनकृतः करैः अपि अस्पृष्टपूर्वा लङ्का येन प्लुष्टा अस्मिन् जगति किम् स वानरः न (आसीत्) वद वा न विश्रुतः?

जिसने समुद्र को देहली की नाई पार कर दिया, छातियों पर ऐरावत हाथी के दान्तों के जख्मों के कारण भयानक राक्षसों को मारडाला लङ्कापुरी-जिसे डरके मारे पहिले सूर्य की किरणों ने भी छू न सका

भीमः-सोपि वानरस्त्वमपि वानरः।

हनुः-किं किं सोपि वानरस्त्वमपि वानर इति। तेन हि अमुनैव तावद्वानरेण सह युध्यस्व।

भीमः-अहो श्लाघ्यं मे रणकर्म।

किं वदिष्यन्ति राजानः श्रुत्वा फल्गुनपूर्वजः।
केनापि कपिना युद्धे भीमः संगतवानिति॥

हनु-(आत्मगतं) एवमिदं; अद्य सुप्रभाता निशा। भ्राता मे मामविज्ञाय गच्छति। किन्तु खलु करिष्ये। भवतु। अस्य गर्वदोषमपनयामि। (प्रकाशं) भोः पुरुष ममाज्ञामुल्लंघ्य न शक्यते गन्तुम्। (इति पुरत आस्ते।)

भीम-आः जरद्वानर अपसर।

—नष्ट भ्रष्ट कर डाली। कहो क्या वह बन्दर नहीं था? क्या संसार उसे नहीं जानता है?

भीम—वह भी बन्दर था तू भी बन्दर है।

हनुमा—क्या? वह भी बन्दर था तू भी बन्दर है, ऐसा समझता है अच्छा! इसी वानर से लड़ले।

भीम—अहो! मेरा युद्ध तो श्लाघनीय है।

किमिति—फल्गुनपूर्वजः भीमः युद्धे केनापि कपिना सङ्गतवान् इति श्रुत्वा राजानः किं वदिष्यन्ति।

अर्जुन का जेठा भाई भीम किसी बन्दर से लड़ा यह सुनकर राजा लोग क्या कहेंगे?

हनुमान—(मनही मन) क्या ऐसी बात है? आज रात खुल गई। मेरा भाई मुझे विना पहचाने चले जा रहा है क्या करूं अच्छा! इसके अभिमान रूपी दोष को मिटाता हूं (प्रकट करके) ऐ! पुरुष! तुम मेरी आज्ञा भंगकर नहीं जा सकते (इस प्रकार आगे हो जाता है)

भीम-ऐ! बूढे बन्दर! (आगे से) हट जा।

हनु:-जरद्वानरोस्मि, नापसरणक्षमः ।

भीम.-त्वामुत्क्षिप्यास्मिन् गिरिकूटे प्रक्षिप्य यास्यामि ।

हनु- छन्दतः ।

भीमः-(पुच्छाग्रं स्पृष्ट्वा सरोमाञ्चम् आत्मगतं) किन्नु खलु आर्य्ययुधिष्ठिर इव मे सुखस्पर्शोयं वानरः । अथवा किम-युक्तकल्पनया । (उत्कम्पितुमशक्तः सव्रीडं)

धिङ्नागायुत-सन्निभं मम बलं धिङ्मारुतादुद्भवं
धिग्वा दिग्विजये जयं क्षितिभृतां धिग्जिष्णुसोदर्यताम् ।
प्रीतस्त्वं भव भोः सुयोधन चिरात्पाञ्चालि ते मूर्धजान्
संयन्ता रिपुशोणितारुणकरः को नाम धन्यः पुमान् ॥

हनु-बूढा बन्दर हूं, कहीं जा नहीं सकता ।

भीम-तुझे इस पहाड़ की चोटी पर फेंक चला जाऊंगा ।

हनु-बड़ी खुशी से—

(पूंछ की नोक पकड़ रोमाञ्चित होकर मन ही मन) न जाने इस बन्दर का स्पर्श क्यों मुझे आज युधिष्ठिर के स्पर्श सदृश सुखदायक होरहा है अथवा असम्भव बात की कल्पना करना व्यर्थ है ।

(न उठा सकने के कारण लज्जित होता है)

धिगिति नागायुत-सन्निभं मम बलं धिक्, मारुताद् उद्भवं धिक्, वा दिग्विजये क्षितिभृतां जयं धिक्, जिष्णुसोदर्यतां धिक् भो सुयोधन चिरात् त्वं प्रीतः भव, पाञ्चालि रिपुशोणिताङ्कितकरः कः नाम धन्यः पुमान् ते मूर्धजान् संयन्ता ।

मेरे हजारों हाथियों के समान बलको धिक्कार, वायु से जन्म को धिक्कार, दिग्विजय में की राजाओं की जय को धिक्कार, अर्जुन के भाई-पने को धिक्कार। हे ! दुर्योधन ! अब तू खुश हो जा । हे द्रौपदी कौन धन्य पुरुष होगा जो शत्रुओं के खून से हाथों को रंगकर तेरे बालों को बान्धेगा ?

हनु-(आत्मगतं) अहो बलं, यन्मया सम्पीडितबलेन कथञ्चि दासितम् । भोःसुयोधन मृत्युदंष्ट्रान्तरं प्रविष्टास्ते प्राणाः ।

भीमः-(आत्मगतं) किन्नु खलु करिष्ये । भवतु । दृष्टम् । अत्र परित्याज्याः प्राणाः (प्रकाशं) भो वानर इदानीं प्राप्तस्ते कालः । कयापि देवतया स्तम्भितं ते शरीरं मुष्टिभिरेव पोथयामि ।

यदि स मम गुरुः स्वजातिभक्त्या
स्वयमभिगम्य न वारयिष्यते माम् ।
स्फुटमिह भविता विहङ्गमानां
कपिपिशितेषु विभागजो विवादः ॥

हनु -इदमपि पश्यामः ।

(उभौ मुष्टिभिः प्रहृत्य युद्धं कुरुतः)

हनु-(मन ही मन) अहो कितना बल है, जो कि मैं दुःखित हो किसी प्रकार (चुपके) सह सका । हे सुयोधन ! तेरे प्राण मृत्यु की दाढ़ में गये समझो ।

भीम-(मन ही मन)क्या करूं । खैर समझ लिया, यहां प्राणों से हाथ धोने होंगे (प्रकट कर) ऐं ! बन्दर ! अब तेरा काल आपहुंचा तेरा शरीर किसी देवता ने जकड़ दिया है (अब) मुष्टिकाओं से ही रून्दूंगा ।

यदीति-यदि स मम गुरुः स्वजातिभक्त्या स्वयम् अभिगम्य मां न वारयिष्यते, (तदा) विहङ्गमानां कपिपिशितेषु विभागजः विवादः भविता ।

अगर वह मेरा जेष्ठ भ्राता (हनुमान्) अपनी जाती के प्रेम से स्वयं मुझे आकर न रोकेगा तो मैंने समझ लिया जरूर ही बन्दरों के मांस के हिस्से करने में पक्षियों की लड़ाई होगी । अर्थात्—सारे बन्दर मारे जायंगे ।

हनु-अच्छा ! यह भी देख लेते हैं ।

(दोनों मुष्टिकाओं से एक दूसरे को प्रहार करते हुए लड़ते हैं)

विद्या–(द्वयोरन्तरं प्रविश्य निवारयन्)

हनुमन् भीम युवयोर्भ्रात्रोर्ज्येष्ठकनिष्ठयोः ।
मारुत्योः किमिदं घोरमसाम्प्रतमुपस्थितम् ॥

भीमः–(विलज्य स्थित्वा आत्मगतं) युक्तमेतत्स्पर्शसुखं संवृत्तम्।

हनु–कुन्तीमातः एहि ।

भीमः–(उपसृत्य) आर्य अभिवादये ।

हनु–एह्येहि वत्स अद्य खल्विदमवगतम् ।

लज्जानमद्वदनमन्थरमीक्षणार्धं
सम्प्रश्रयाहृतकरद्वयरुद्धवक्षः ।
साकूतदर्शनकृतैककटाक्षपात-
माश्लेषसौख्यमनुजस्य सुधेत्यभेदः ॥

विद्या–(दोनों के बीच जाकर हटाता हुआ)

हनुमन्निति—हनुमन्, भीम, युवयोः मारुत्योः ज्येष्ठकनिष्ठयोः भ्रात्रोः इदं घोरं असाम्प्रतं किं उपस्थितम् ।

हे हनुमान् ! और भीम ! वायु के पुत्र तुम-दोनों छोटे बड़े भाइयों का यह घोर युद्ध अनुचित है ।

भीम–(शर्मिन्दा होकर मनहीमन) इस के स्पर्श से जो मुझे युधिष्ठिर सा आनन्द हुआ था वह बिलकुल ठीकहुआ ।

हनु–ऐ ! कुन्ती के पुत्र ! इधर आओ ।

भीम–(निकट जाकर) आर्य ! प्रणाम करता हूं

हनु–प्रिय ! आओ, आओ,आज मालूम हुआ

लज्जानमदिति–लज्जानमद्वदनमन्थरमीक्षणार्धं सम्प्रश्रयाहृतकरद्वयरुद्धवक्षः साकूतदर्शनकृतैककटाक्षपातम्, अनुजस्य आश्लेषसौख्यं सुधा इति अभेदः ।

छोटे भाई के आलिङ्गन के सुख में और अमृत में कोई भी भेद नहीं । जिस में लज्जा के कारण मुख के झुकने से नजर आधी पड़ती है, विनय पूर्वक उठाये हाथों से छाती ढकी है, और अभिप्राय गर्भित

(ससम्भ्रमं विद्याधरमवलोक्य) आमोदाद्विस्मृतः समुदाचारः। भद्रमुख एतदासनमास्यताम्।

विद्या -ननु युवामपि श्रान्तौ।

हनु–आस्व। कुमार आस्व। (सर्वे उपविशन्ति) अथ कोत्र-भवान्।

विद्या—अहं पुरन्दरस्य नियोगकारी कल्याणको नाम विद्याधरः। इयञ्च मम सहचारिणी गुणमञ्जरी नाम।

हनु—कुत इदनीम्।

विद्या--स्वर्गादागतोस्मि।

भीमः—अपि वृत्तेन परितोषयति पितरमर्जुनः।

विद्या—किमिति न परितोषयेन्महासत्त्वः।

भीमः—कथं महासत्त्व इति।

दृष्टि से देखा जा रहा है।

(हड़बड़ी से विद्याधर को देखकर)

अति आनन्द में मैं सत्कार करना भी भूल गया। श्रीमन्! यह आसन है बैठिये

विद्या–आप (दोनों) भी तो थके हुए हैं।

हनु–बैठो कुमार बैठो (सारे बैठ जाते हैं) आप कौन हैं ?

विद्या–मैं इन्द्र का सेवक कल्याणक नामक गन्धर्व हूं और यह मेरी प्रियतमा गुणमञ्जरी है।

हनु–इस समय कहां से पधारे हैं ?

विद्या–स्वर्ग से आया हूं।

भीम–अर्जुन अपने सद्व्यवहारों से अपने पिता को खुश तो रखता है ?

विद्या–ऐसे वीर पुरुप प्रसन्न क्यों न रक्खें ?

भमि–वह वीर पुरुष कैसे है ?

विद्या—भोः श्रूयताम् । प्रवृत्ते खलु नृत्योत्सवे स्ववंशप्रभवभूमिकायां सस्पृहमवलोकितायामनुपश्यतो गुरोराज्ञाकरेण सख्या चित्रसेनेन प्रेषितां,

शृङ्गारवेषरमणीयवपुःप्रकर्षां
 रङ्गोत्थितामुपगतां स्वयमेव शय्याम् ।
तामुर्वशीमुपचरन् गुरुभिः समानां
 लज्जानमद्वदनचन्द्रमसं चकार ॥

भीमः—भोः सदृशामिदमनुष्ठितम् ।

हनु—अथ किमागमनप्रयोजनम् ।

विद्या—अहं खलु सेवागतोयमुपह्वरमाहूय स्वामिना समादिष्टः । यथा रामलक्ष्मणयोरिव भ्रातृत्वं युवयोरवबोधयेति ।

विद्या-सुनो जब नाच शुरू था उस समय अपने वंश की उत्पत्ति की भूमिका के बड़ी उत्कण्ठा से देखने पर सामने ही गुरु (इन्द्र) का परमाज्ञाकारी मित्र चित्रसेन की भेजी हुई—

शृङ्गारवेषेति—शृङ्गारवेषरमणीयवपुःप्रकर्षां रङ्गोत्थितां स्वयमेव शय्यां उपगतां उर्वशीं गुरुभिः समानां उपचरन् वदनचन्द्रमसं लज्जानमत् चकार ।

शृङ्गार करने से सुन्दर बनी हुई, रङ्ग (स्टेज) से स्वयमेव शय्या में आई हुई उर्वशी की (जो कि स्वयं अनुराग के भाव से आई थी) गुरु के (माता) के समान सेवा (व्यवहार) अर्जुन ने की और उस (उर्वशी) को लज्जा से अपने मुखचन्द्र को नीचा करना पड़ा उर्वशी अर्जुन के पास प्रेमभाव से आई थी लेकिन वह सफल न हो सकी इस लिये उसे लज्जित होना पड़ा ।

भीम-यह उस ने बहुत अच्छा किया ।

हनु-आपका आना कैसे हुआ ?

विद्या-(एक दिन) मैं इन्द्र की सेवा करने गया था तो उसने मुझे एकान्त में बुला कर कहा । जैसे राम लक्ष्मण का भ्रातृभाव

हनु—हा राम (इति मूर्छितः पतति)
उभौ—समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।
हनु—(समाश्वस्य) हा भक्तवत्सल ? किन्न जानीषे,

शाखामृगोऽस्मि तरुपल्लवमात्रसारः
स्तुत्यः सतां सदसि यस्य परिग्रहेण ।
तेन त्वया विरहितो रघुनन्दनेन
भारं महान्तमिव जीवितमुद्वहामि ॥

हा नाथ,

पवनतनय हे सखे ? हनूमन्निति
विगलद्वचनामृते मुखेन्दौ ।
तव वरद दृशा (श्व ? व) कुर्वतो मे
परमिव वञ्चनमेव दीर्घमायुः ॥

है, वैसा तुम्हारा भी है हे कल्याण ? यह उन्हें जाकर जतादे ॥

हनु-हा ! राम ! (इस प्रकार व्याकुल हो गिर पड़ता है)

दोनों-धीरज रक्खो, धीरज रक्खो।

हनु-(चेतन होकर) ऐ ! भक्त-वत्सल क्या नहीं जानता ?

शाखामृगोऽस्मीति—तरुपल्लवमात्रसारः शाखामृगः अस्मि यस्य परिग्रहेण सतां सदसि स्तुत्यः, तन त्वया रघुनन्देन विरहितः जीवितं महान्तं भारं इव उद्वहामि ।

मैं एक बन्दर हूं, जो वृक्ष के पत्तों से गुज़ारा करता हूं, लेकिन जिसकी कृपा से मैं सज्जनों में प्रशस्त हूं, उस तुझ रघुनन्दन (राम) से विछुड़ कर बड़े भारी बोझ की नाईं (कथंचित्) जीवन धारण कर रहा हूं ॥

हा ! स्वामिन् !

पवनतनयेति—'पवनतनय हे सखे हनुमन्' हे वरद, इति विगलद्वचनामृते तव मुखेन्दौ दृशौ अकुर्वतः मे दीर्घम् आयुः परमिववञ्चनम् एव।

ऐ ! वर को देने वाले रामचन्द्र जी ! तुम्हारे-ऐ ! पवन पुत्र !

हा वैदेहि,

जनकं जनकं किलाह लोको
जनकस्त्वं जनयन् पुनर्ममासून् ।
इति जानकि यत्त्वयाहमुक्तः
क्षरदस्रं मनसीव तन्ममाद्य ॥

हा लक्ष्मण,

भ्रातुर्ज्येष्ठस्य तं स्नेहं विभज्य मयि भृत्यताम्
कथमेकः कृतान्तत्वं समग्रमनुभूतवान् ॥

भीमः—धीरो भवान्नात्यर्थं शोकवश्यो भवितुमर्हति। वियोग-

सखे! हनुमन्! इस प्रकार निकलते हुए वचन रूपी अमृत सने मुख रूपी चन्द्रमा को न देखते हुए मेरा चिरकाल तक जीना क्या है? मुझे वञ्चित करना (ठगना) है।

हा! (माता) जानकि!

जनकमिति—'लोकः जनकं किल जनकम् आह पुनः मम असून् जनयन् त्वं जनकः' हे जानकि, इति यत्त्वया अहं उक्तः तत् अद्य मम मनसि क्षरदस्र१ (वर्त्तते)।

दुनियां के कथनानुसार राजा जनक मेरा पिता है, परन्तु मैं अपने प्राणों को बचाने के कारण तुझे ही जनक समझती हूं, इस प्रकार ऐ! माता! सीते! जो तुमने मुझे कहा वह आज मेरे मन में रक्त की नाईं पिघल रहा है।

हा लक्ष्मण!

भ्रातुर्ज्येष्ठस्येति—ज्येष्ठस्य भ्रातुः तं स्नेहं मयि च भृत्यतां विभज्य एकः (त्वं समग्रं कृतान्तत्वं कथं अनुभूतवान्।

हा! लक्ष्मण! बड़े भाई के उस प्रेम को और मेरे ऊपर सेवक-भाव को तोड़ कर तुमने अकले ही सारा यमराजत्व कैसे लेलिया? (अर्थात् तुम अकेले ही इस संसार से क्यों चलबसे)।

भीम—(ऐसा) धीर होकर (आपको) इतना शोक करना

परिणामो ननु संयोगः।

हनु--कुमार ? इदानीं कृतार्थोऽस्मि।

भीमः--अहो गुणवत्ता रामस्य, यदथमार्यस्यावशयति हृदयम्।
यदि नात्यायतस्तस्य महात्मनश्चतरिश्रवणकुतूहलि मे चेतः।

हनु--कुमार ? श्रूयताम्। स खलु धर्मसंरक्षणार्थं मानुषतामुपगतो भगवान् विष्णुः।

हित्वा राज्यसुखं पितुर्वचनतो नक्तञ्चरान् कानने
हत्वा शूर्पणखानिकाररुषितानन्विष्य सीतां हृताम्।
कृत्वा वालिवधार्जितेन सुहृदा सेतुं व्यतीताम्बुधि-
र्लङ्केशं हतवांस्तमन्यमकरोत्प्रायादयोध्यां पुनः॥

अनुचित है। संयोग वियोग के लिए ही हुआ करता है।

हनु—कुमार! इस समय मैं कृतार्थ होगया।

भीम—अहो! राम के गुणों की कैसी महिमा है? जो आपके हृदय को भी विवश कर रही है। आर्य! यदि कोई हानि न हो तो मेरा मन उस महापुरुष का चरित्र सुनना चाहता है।

हनु—कुमार! सुनिये, वे साक्षात् भगवान् विष्णु हैं, धर्म रक्षा के लिए मनुष्य योनि में आये हैं।

हित्वा राज्यसुखमिति—पितुः वचनतः राज्यसुखं हित्वा कानने शूर्पणखानिकाररुषितान् नक्तंचरान् हत्वा हृतां सीतां अन्विष्य वालिवधार्जितेन सुहृदा सेतुं कृत्वा व्यतीताम्बुधिः लङ्केशं हतवान् तं अन्यं (विभीषणं) लङ्केशं अकरोत् पुनः अयोध्यां प्रायात्।

उन्होंने पिता की आज्ञा से राज्य के सुख को ठुकरा कर, जंगल में सूपर्णखा (रावण की बहिन) के अपमान से क्रोधित राक्षसों को मार कर, रावण की चुराई हुई सीता को ढूंढ कर, बालि के वध से प्राप्त हुए मित्र (सुग्रीव) की सहायता से पुल बना कर समुद्र पार कर रावण मार

ततः सहस्राधिकमयुतं वर्षाणामनुरञ्जितजीवलोकः स्वर्ग-लोकमितो गतवान्।

भीमः–आर्य महानयमनुग्रहः। कथेयममृतसेक इव श्रवणयोः।

विद्या–यथावदनुष्ठितशासनममराधिपतेर्निवेदयामि।

हनु–एवं गच्छतु भवान् पुनर्दर्शनाय।

(निष्क्रान्तो विद्याधरः सह प्रियया)

हनु–अद्य मे सफलं चक्षुः स्मारितश्चापि राघवः।
भूयस्त्वद्गात्रसंश्लेषमिच्छत्येषा तनुर्मम॥

(इति परिष्वजति) कुमार? धार्तराष्ट्रानधिकृत्यैष मे निश्चयः।

गिराया तथा उसकी जगह बिभीषण को सिंहासन पर बिठा कर फिर अयोध्या को प्रस्थान किया।

अनन्तर वे ग्यारह हज़ार वर्ष राज्य कर संसार को प्रसन्न कर इस मृत्यु लोक से स्वर्ग को सिधारे।

भीम—आर्य! यह आपने बड़ी कृपा की। इस कथा ने मेरे कानों को अमृत प्रवाह की भांति सुख दिया।

विद्याधर—मैंने आज्ञा का पालन कर लिया है, जरा इसकी सूचना इन्द्र को दे दूं।

हनुमा--अच्छा आप जावें, फिर (कभी) दर्शन देना,

(प्रियासहित गन्धर्व चला जाता है)

हनुमान्–अद्येति–अद्य मे चक्षुः सफलं राघवः अपि च स्मारितः एषा मम तनुः भूयः त्वद् गात्रसंश्लेषं इच्छति।

हनु—आज मेरे नेत्र सफल हो गये। (तुमने)रामचन्द्र जी की भी याद दिला दी। अब यह मेरा शरीर फिर तुम्हारे शरीर का आलिङ्गन करना चाहता है।

(इस प्रकार कह कर आलिङ्गन करता है)

ऐ! कुमार! कौरवों के विषय में तो मेरा यह दृढ़ निश्चय है कि—

अनतिचिराविमुक्तैर्निष्ठुरैर्मुष्टिपातैः
स्फुटितपृथुशरीरा वैरिणस्तावकीनाः।
रणशिरसि हतानां कौरवा राक्षसानां
गतिभिरविरलाभिः शोधयिष्यन्ति मार्गम् ॥

भीमः–एवं चेद् व्यर्थौ मे भुजयुगलयोर्भारः।

हनु–भवतु। एवं तावत्करिष्ये।

(निर्घोष्ट ?) शुष्काशनिशोषितासून्
कर्तास्मि सन्नो ज्वलनप्रकाशम्।
पार्थस्य सत्केतुललामवासी
प्रक्षीणपक्षान्युधि धार्तराष्ट्रान् ॥

भीमः–दिष्ट्या सनाथाः पाण्डवाः।

अनतिचिरेति–अनतिचिरविमुक्तैः निष्ठुरैः मुष्टिपातैः स्फुटितपृथुशरीराः तावकीनाः वैरिणः कौरवाः अविरलाभिः गतिभिः रणशिरसि हतानां राक्षसानां मार्गं शोधयिष्यन्ति।

निठुर मुष्टिकाओं की चोटों के लगातार पड़ने से तेरे वैरी कौरवों का शरीर कट फट जायगा और वे सतत-गति से युद्ध में मरे राक्षसों के मार्ग को सुथरा बनावेंगे (अर्थात्–वे राक्षसों की नाईं लगातार एक के पीछे दूसरा मृत्यु के ग्रास बनते जायंगे)।

भीम–अगर तुम्हीं ऐसा कर डालोगे तो मेरी ये भारी भुजायें किस काम आवेंगी ?

हनु–अच्छा! यह तो मैं कर दिखाऊंगा।

निर्घोष्टेति–युधि पार्थस्य सत्केतुललामवासी ज्वलनप्रकाशंसन्नः निर्घोष्टशुष्काशनिशोषितासून् धार्तराष्ट्रान् प्रक्षीणपक्षान् कर्तास्मि।

अर्जुन की सुन्दर ध्वजा में रहकर मैं सूनसान अपने कठोर वज्र से कौरवों के प्राण सुखाकर आग बबूले हो उनके दल को अच्छी तरह नष्ट भ्रष्ट कर डालूंगा।

भीम–सौभाग्य से (आज पाण्डवों को रक्षक प्राप्त हो गया।

हनु-कुमार ? किं ते भूयः प्रियमुपहरामि ।
भीमः-प्रियं प्रियाया विहितं वशीकृताः
विजित्य संख्ये परिपंथिनः पथि ।
त्वदङ्गसङ्गाच्च तनुर्विशोधिता
कृतार्थभूतैः किमिवान्यदिष्यते ॥

(भरतवाक्यम्)

तथाप्येतावदस्तु ।
दोषाश्च नाशमुपयान्तु कृतावमुष्यां
भूयो भवं क्षपयतान्मम नीलकण्ठः ।
निर्धार्तराष्ट्रनियतिं निखिलां धरित्रीं
पायान्नृपः सविजयोऽयमजातशत्रुः ॥

कल्याणसौगन्धिकं समाप्तम् ॥

हनु-कुमार ! और तुम्हें क्या प्रिय वस्तु प्रदान करूं ।

प्रियमिति-प्रियायाः प्रियं विहितं संख्ये परिपन्थिनः विजित्य वशीकृताः, पथि त्वत् अङ्गसंगात् च तनुः विशोधिता, कृतार्थभूतैः अन्यत् किमिव इष्यते ।

भीम-मैंने प्यारी की मनोवांछा पूर्ण कर ली, युद्ध में शत्रु जीतकर अपने आधीन कर लिये, मार्ग में तुम्हारे शरीर के स्पर्श से अपना शरीर पवित्र बना लिया, इस प्रकार सब मनोरथ प्राप्त कर पुरुष क्या अन्य वस्तु की भी कामना करते हैं ? अर्थात्-नहीं)

(भरत का वाक्य)

तो भी इतना तो अवश्य होना ही चाहिये कि—

दोषाश्चेति-अमुष्यां कृतौ दोषाश्च नाशं उपयान्तु, नीलकण्ठः मम भूयो भवं क्षपयतां, सविजयः अयं नृपः अजातशत्रुः निर्धार्तराष्ट्रनियतिं निखिलां धरित्रीं पायात् ।

इस (कौरव-विजय रूप) कार्य की अड़चनें दूर होजावें, मुझे शिव जी फिर जन्म न दें (अर्थात्-मुक्त करदें) और विजय प्राप्त कर राजा

युधिष्ठिर कौरवों से हीन पृथ्वी का पालन करें।

इति उर्वीदत्त-शास्त्रि-विरचिता कल्याण सौगन्धिकस्य भाषा-टीका समाप्ता।

अनुबन्धः

भीमः-आर्य महानयमनुग्रहः कथेयममृतसेक इव मे श्रवणयोः।

विद्या-अस्ति सन्देशः।

हनु-संबोधितोऽस्मि (साञ्जलिरुत्थाय) किमज्ञापयति देवः।

विद्या-ननु आसनस्थेनैव भवता श्रोतव्यम्।

हनु-अनुगृहीतोऽस्मि। (उपविशति)

विद्या-

यः सञ्जातः पुरा रामो देवो नारायणप्रभुः
तस्य सख्यं प्रियां पश्य द्रौपदीं जानकीमिव॥

हनु-सम्यगनुबोधितोऽस्मि।

विद्या-यावदादिष्टमनुष्ठितममराधिपतेर्निवेदयामि।

उभौ-यद्भवते रोचते।

(निष्क्रान्तो विद्याधरः सह प्रियया)

हनु-कुमार? मार्गमादेशय।

भीम-इत इतः।

(उभौ पर्वतावतरणं नाटयित्वा)

भीमः-इयमाश्रमानिकटवर्तिनी वृत्तमध्यासीना किमपि चिन्तयन्ती यज्ञसेनदुहिता।

हनु-

अद्यमे सफलं चक्षुः स्मारितश्चापि राघवः।
भूयस्त्वद्गात्रसंश्लेषमिच्छत्येषा मतिर्मम॥

(परिष्वजति)

(ततः प्रविशति द्रौपदी)

द्रौपदी-किरणुहु चिराअदि णाहो।

उभौ–(उपसृत्य) देवि सिद्धस्ते मनोरथः ।

द्रौपदी -(साञ्जलिरुत्थाय) जेदु णाहो । णाह को एसो ।

भीमः–नन्वार्यो हनुमान्।

द्रौपदी–जेदु अय्यो विपक्खपारिपीडिआणं इत्थिआणं सारिणोभूदो एत्थ उववि‍सदु ।

हनु–भद्रे,

अजातशत्रुप्रमुखैर्भ्रातृभिर्ध्वस्तशत्रुभिः ।
अधिष्ठितपदैः सार्धं चिरहर्षमवाप्नुहि ॥

आस्व कुमार ? आस्व। (सर्वे उपविशन्ति) ।

भीमः(पुष्पाण्युपनीय) अमूनि गृह्णीष्व ।

द्रौपदी -(गृहीत्वा सहर्षं) अज्ज खु मए (दिण्णा दत्तन्तेल्लोकि-सारभूदो गन्धमाद्णात्ति ?)

हनु–(अये वैनमतिसाहसान्नियुक्तवती ?)

द्रौपदी–णहि णहि । अण्णो मे मनोरहो ।

हनु–कथमन्य इति ।

द्रौपदी–सच्चवं सुणादु अंओ णिवुत्तस्समआणं णाहाणं देवासुर-सङ्गामसमो समरागमो भविस्सदि ।

हनु–ततस्ततः ।

द्रौपदी–क्रिन्तस्स (दिक्खोतस्स) गन्धप्पमोदवहलत्तणद (र?श) ण अंओ (विवाद) कारिस्सदित्ति सोअन्धिअव्वाजेण एव्व एअ्वं किदम् ।

हनु–अप्ययं मनोरथः पुरन्दरेण विदितः ।

द्रौपदी–विदिदो अंअ (एव) अंअदस्सणं उववादीए अन्तिए मए सव्वो णारदमुहेण वि पिदुभवणं गए अज्जुणे प्पआसिदे ।

हनु–सर्वमत्याङ्गिरसा सुनीतम्। भद्रे किमिदानीं मया कर्तव्यम् ।

दौपदी–अवरं जह रक्खसवञ्चणादो जाणई तह रिपुवञ्चणादो

अहं पिराखिदव्वो।

हनु—कः संशयः। किमिदानीं, वद।

अनतिचिरविमुक्तैर्निष्ठुरैर्मुष्टिपातैः
स्फुटितपृथुशरीरा वैरिणस्तावकीनाः।
रणशिरसि हतानां कौरवा राक्षसानां
गतिभिरविरलाभिः शोधयिष्यन्ति मार्गम्॥

भीमः—एवं चेद्व्यर्थौ मे भुजयुगलयोर्भारः।

द्रौपदी—एसो मे पणओ। अज्जस्स रणभूमीए वट्टमाणस्स सण्णिहिदेण अय्येण उग्गप्पाणादेहिं सङ्खोहिदव्वो सत्तुसङ्घो।

हनु—एवमेव करिष्ये

निर्घोषशुष्काशनिशोषितासून्
कर्तास्मि सन्नो ज्वलनप्रकाशम्।
पार्थः (च) सत्केतुललामवासी
प्रक्षीणपक्षान्युधि धार्त्तराष्ट्रान्॥

त्वमपि,

त्यक्त्वेदं वनवासदुःखमचिरात्साक्षातवासं प्रिये
नोक्तासीः कृतमात्रमेत्य मुदिता सौगान्धिकं वा रिपोः।
पौलोमीव शतक्रतोः क्रतुशतान्याह (तुरभ्याशगात्?)
भर्तुर्भूतहताच्च जीविततरोर्भद्रे? फलं दास्यसि॥

द्रौपदी—अणुग्गाहिदह्मि।

हनु—कुमार? किमपरं मया कर्तव्यम्

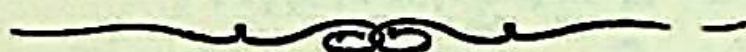
भीमः—

प्रीता प्रिया त्वयि विभो नयने कृतार्थे
देव प्रसाद्य विकृतामसि गुम्भ्यःकेशः।
सौगन्धिकं सुरभिगन्धि सुरार्चितं वः
कल्याणसम्पदुदयाद्भुतकामधेनुः॥

(भरतवाक्यम्)

दोषाश्च नाशमुपयान्तु कृतावमुष्यां
भूयोभ (यं ? वं) त्वपयताम्मम नीलकण्ठः ।
निर्धार्त्तराष्ट्रनियतिं निखिलां धारित्रीं
पायान्नृपः सोऽयमजातशत्रुः

॥ श्रीनीलकण्ठस्य कृतिः । कल्याणसौगन्धिकमेकाङ्कं समाप्तम् ॥



पद्मचन्द्र कोष।

अर्थात्

व्युत्पत्ति विषय सहित संस्कृत—हिन्दी कोष।

३०००० तीस हज़ार शब्दों का एक वृहत् संग्रह।

निर्माता–महामहोपाध्याय पं० गणेशदत्त शास्त्री-लाहौर

इस कोष की तृतीयावृत्ति अभी छपकर तैय्यार हुई है। पहली दो आवृत्तियों में इस में २०००० वीस हजार शब्दों का संग्रह था, किन्तु हमने इस कोश को ख़ास करके अधिक उपयोगी बनाने के लिए इसमें १०००० दश हज़ार शब्द और बढ़ादिए हैं। पहली वा दूसरी आवृत्ति की पृष्ठ संख्या ४७५ थी, इस आवृत्ति की पृष्ठ संख्या ६०० है। पहली आवृत्तियों की जिल्द सादी विना कपड़े वाली थी, इस आवृत्ति की जिल्द विलायती कपड़े की है, और सुनहरी ठप्पा भी विलायती ही रूप का लगा हुआ है। वहुत ही सुन्दर आकृति बनी है।

इस कोष में प्रथम मोटे टाईप में संस्कृत शब्द पीछे उससे कुछ थोड़े बारीक टाईप में, उनके लिङ्ग, संस्कृत में उनकी व्युत्पत्ति और एक एक शब्द के हिन्दी भाषा में अनेक अर्थ स्पष्ट कर दिये गये हैं, जिससे थोड़ा पढ़ा लिखा भी लाभ उठा सके। ग्रंथ बड़े आकार का है।

छपाई ६० पौंड के मोटे विलायती ग्लेज़ कागज पर भारत भर के सुप्रसिद्ध मुम्बई वाले निर्णय सागर प्रेस में हुई है। दाम ७) सात रुपया।

इस कोष पर यूरोप तथा भारत के वड़े २ विद्वानों, प्रोफ़ैसरों और प्रिंसिपलों ने वहुत श्रेष्ठ सम्मतियां दी हैं।

यह कोष हिन्दी वा संस्कृत परीक्षार्थियों तथा कालेज वा स्कूलों के विद्यार्थियों के लिए बड़े काम की चीज़ है।

मध्यकौमुदी—सटिप्पण: व्याकरणाचार्य, व्याकरणाध्यापक, पं. श्रीधरानन्द जी शास्त्री, ब्रह्ममहाविद्यालय, लाहौर-कृत सरल व विस्तृत टिप्पणी सहित छपकर तय्यार हुई है, अत्यन्त सुन्दर कागज व सुन्दर टाइप मूल्य केवल-१)रु.

रामकोष—यह कोष विद्यार्थियों को उस बड़ी भारी कठिनाई को दूर करता है जो कि उन्हें हिन्दी से संस्कृत बनाने में हुआ करती है। इसमें प्रत्येक हिन्दी शब्द की संस्कृत बनाई हुई है, सुन्दर कागज पक्की कपड़ेकी जिल्द मू. ३)

लोकोक्तिरत्नप्रभा—संस्कृत की सब लोकोक्तियों का अकारादि क्रम से संग्रह किया गया है यह पुस्तक अपने विषय की अपूर्व पुस्तक है। उस पर भी दाम केवल ॥) आना

रत्नसमुच्चय—संसार भर की समस्त संस्कृत पुस्तकों का वृहत्सूचीपत्र। इस सूचीपत्र में संस्कृत की सब पुस्तकों का परिचय विषयादि अनुक्रम व मूल्यादि दिया गया है। कीमत १) रू. किन्तु केवल दो मास के लिए विद्यार्थियों की सुगमता को केवल ॥) आना कीमत रक्खी है जहां तक जल्दी होसके खरीद करें, खतम होजाने पर केवल हाथ मलते ही रहजाना होगा॥

सर्व प्रकार की संस्कृत हिन्दी पुस्तकों के मिलने का पता—

मेहरचन्द्र—लक्ष्मणदास—

संस्कृत पुस्तकालय, सैदमिट्ठा बाजार

लाहौर।